International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 187-188

पं0 दीनदयाल उपाध्याय – एकात्म मानववाद

Dr. Nirmal Singhroha
Assistant Professor in Hindi, Keshav College of Education, Salwan, Karnal, Haryana, India

प्रस्तावना

एकात्ममानववाद भारतीय चिंतन धारा में पं0 दीनदयाल उपाध्याय की एक महत्वपूर्ण देन है। यह कोई नवीन विचार नहीं हैं, इसके बीज भारतीय परम्परा में वेदों, उपनिषदों, एवं भगवद्गीता में देखे जा सकते हैं। यह भारतीय संस्कृति की युगानुरूप व्याख्या है वे कहते हैं – 'स्वराज तभी साकार और सार्थक होगा जब वह अपनी संस्कृति की अभिव्यक्ति का साधन बन सकेगा। इस अभिव्यक्ति में हमारा विकास भी होगा और आनन्द की अनूभूति भी होगी। दीनदयाल जी की एकात्ममानववाद भारत की प्राचीन दार्शनिक परम्परा की एक क्रान्तिकारी विचारधारा है जिसका प्रयोग वे एक नये राष्ट्र और विश्व के निर्माण के लिए करना चाहते थे। एकात्ममानववाद का केन्द्रीय विचार है कि जीवन एक समग्रता है। यह जीवन को खण्ड़ों–खण्ड़ों में बांटकर पुनः उन खण्डों को एक में जोड़ने की पद्धति नहीं है। समस्त अनेकताओं और विविधताओं के पीछे एक एकात्मकता है एकात्मकता का यही सिद्धान्त भारतीय दर्शन का मूलमंत्र और यही राष्ट्रगान निर्माण का व्यवहारिक एवं वैज्ञानिक उपाय है।

एकात्म मानववाद का अर्थ

एकात्म मानववाद का अर्थ है मानव–जीवन तथा सम्पूर्ण प्रकृति के साथ एकात्म सम्बन्धों का दर्शन। अतः यह केवल 'मानव' दर्शन न होकर एक परिपूर्ण 'एकात्म दर्शन' है। इसमें केवल मानव और मानव के बीच सम्बन्धों का ही नहीं अपितु मानव और मानवेत्तर प्रकृति के सम्बन्धों का दर्शन होता है। 'एकात्म मानववाद' अर्थात 'समग्र जीवन और दर्शन'। पण्ड़ित जी एक जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न और मूलगामी चिन्तक थे। उनका चिन्तन केवल व्यक्ति जीवन से लेकर सम्पूर्ण मानव जाति तक सीमित नहीं है। परन्तु मानवेत्तर प्रकृति और उससे भी आगे बढ़कर परमेष्ठी अर्थात 'सर्वखल्विंद ब्रह्म' की धारणा को व्यक्त करने वाला है।

एकात्मवाद की पृष्ठ भूमि

स्वतन्त्रता के पूर्व देश की समस्त राजनीति एवं आन्दोलनों का एक मात्र लक्ष्य था अंग्रेजों को हटाकर देश को स्वतन्त्र कराना। स्वन्तत्रता के बाद देश की दशा और दिशा क्या होगी। ऐसा बहुत कम लोगों ने ही विचार किया। लोकमान्य तिलक ने स्वन्त्रता आन्दोलन की भूमिका को स्पष्ट करने वाले 'गीता रहस्य' एवं महात्मा गांधी ने 'हिन्द स्वराज्य' लिखकर आगामी भारत के चित्र को प्रस्तुत किया। कांग्रेस और अन्य राजनीतिक दलों ने भी यदाकदा ऐसे विचार एवं प्रस्ताव प्रस्तुत किए। लेकिन इस विषय का जितनी गम्भीरता से विचार आवश्यक था। सम्भवतः वह नहीं हो सका।

इससे बड़े दुर्भाग्य की बात तो यह थी कि स्वन्तत्रता प्राप्ति के कई वर्षों के उपरान्त भी देश की कोई निश्चित दिशा तय नहीं हो सकी। अतः ऐसी परिस्थिति में पण्ड़ित दीनदयाल जी जैसे आजीवन राष्ट्रवती प्रखर मनीषा सम्पन्न व्यक्ति के मस्तिष्क में विचार मन्थन प्रारम्भ होना स्वाभाविक है और इसी विचार मन्थन के परिणाम स्वरूप 'एकात्म मानववाद' नामक 'नवरसायन' हमको प्राप्त हो सका। भारत की भावी दिशा क्या होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में अपनी विचारधारा को प्रतिपादन करते समय उन्होंने तत्कालीन प्रचलित यूरोपीय विचार धाराओं को 'स्वदेशी' कसौटी पर कसने का प्रयत्न किया। उस समय भारत की राजनीति उक्त यूरोपीय विचारधाराओं से बहुतायत मात्रा में प्रभावित थी।

राष्ट्रवाद के उदय के कारण पोप की अधिसत्ता समाप्त हो गयी किन्तु धीरे–धीरे राजा की अधिसत्ता का प्रारम्भ हुआ। राजा लोग अपने आप को ईश्वर का अंश और प्रजा का भाग्य विधाता मानने लगे। अतः निरंकुशता का जन्म होने लगा। फलस्वरूप जनता असंतुष्ट होती चली गयी। व्यक्ति स्वातन्त्रय की भावना बलवती होने लगी। इसी व्यक्ति स्वातन्त्रय और समाज की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए वैधानिक शासन के द्वारा राजाओं के अधिकारों को सीमित कर दिया गया और ससंद जैसी संस्थाओं का निर्माण हुआ। जनतन्त्र का सूर्य उदित हुआ। जनतन्त्र में सभी नागरिकों को व्यक्ति स्वातन्त्रय प्राप्त हुआ।

पण्डित जी का मानना था कि ''बिना शुद्ध राष्ट्रभाव के कोई भी राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता और तो और वह अपनी स्वतन्त्रता को भी सुरक्षित नहीं रख सकता। राष्ट्रीयत्व का ज्ञान धूमिल पड़ जाने के कारण ही हम तमाम आपत्तियों में फंस गये है।''

हमारा राष्ट्रजीवन अपना जड़ मूल खो बैठा है। इस घटना को रोकने का केवल एक ही उपाय है कि राष्ट्र जीवन का सच्चा साक्षात्कार किया जाए। राष्ट्र के इस सच्च साक्षात्कार के अभाव में ही हमारा वर्तमान में राष्ट्रीय पतन हुआ है।

साथ साथ पण्ड़ित जी ने यह भी कहा कि मान लो हम विश्व की किसी विचारधारा को अपने देश में लागू भी करें तो क्या वह हमारे देश के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकेगा ? क्यों कि प्रत्येक देश की अपनी अलग ऐतिहासिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां होती है और वह अपनी इस बात को पुष्ट करने के लिए एक उदाहरण भी देते थे कि 'विश्व भर में मनुष्यों के शरीर के अंगों की क्रिया समान होते हुए भी जो औषधि इंग्लैण्ड में कारगर होती है वह भारत में भी उपयोगी सिद्ध होगी यह निर्विवाद नहीं कहा जा सकता।

.... यद्देशस्य यो जन्तुः तद्देशस्य तस्यौषद्यम्।''[2]

दीनदयाल जी के मन में अपने राष्ट्र जीवन के बारे में गहन विचार मन्थन चल रहा था। राष्ट्र के लिए भावी दिशा क्या हो सकती है ? क्या यूरोपीय विचार हमारे लिए खरे उतर सकते हैं जो यूरोप के लिए भी उपयुक्त नहीं रह सके जो समय की कसौटी पर टिक नहीं सके जिन्हें कालजयी नहीं कहा जा सकता है ऐसे विचार या सिद्धान्त भारत के भविष्य का निर्माण कर सकते हैं क्या ? ऐसे तमाम प्रश्नों का उत्तर खोजने की उत्कट इच्छा से पण्ड़ित जी की दृष्टि भारतीय संस्कृति की ओर आकृष्ट हुई।

''आज विश्व किंकत्तव्य विमूढ़ है उसे मार्ग नहीं दीख रहा है कि वह कहां जाय। पश्चिम आज इस अवस्था में नहीं कि वह निर्विवाद

रूप से आत्म विश्वास पूर्वक यह कह सके कि नान्यः पन्थाः। वे स्वयं मार्ग टटोल रहे हैं। अतः उनका अन्धानुकरण करने से तो अन्धेन नीयमाना यथान्धाः की ही उक्ति चरितार्थ होगी। इस परिस्थति में हमारी दृष्टि भारतीय संस्कृति की ओर जाती है।''[3]

शासन के नियमों को भी ऐसा बनाया जाना चाहिए जिससे सबसे नीचे बैठे आदमी को ऊँचा उठाया जा सके। पण्ड़ित जी कहते थे कि देश के अनपढ़ और दरिद्र लोग ही हमारे नारायण हैं, यही सामाजिक या मानव धर्म है। करोड़ों लोग बेसहारा और अनपढ़ है। ..... इन करोड़ों लोगों को अपने चारों पुरूषार्थों को साधने का अक्सर मिले तभी एकात्म मानव की कल्पना साकार होगी।''

कालीकट के अधिवेशन में पण्ड़ित जी का अध्यक्षीय भाषण उनकी अन्त्योदय की भावना तथा दरिद्रों के प्रति उनके सहज चिनता को अक्षर शः व्यक्त करने वाला है।

''ग्रामों में जहां समय अचल खड़ा है जहां माता–पिता अपने बच्चों के भविष्य को बनाने में असमर्थ है उनके बीच जब तक हम आशा और पुरूषार्थ का सन्देश नहीं पहुंचा पाऐंगे तब तक हम राष्ट्र के चैतन्य को जागृत नहीं कर सकेंगे। हमारी श्रद्धा का केन्द्र आराध्य और उपास्य, हमारे पराक्रम और प्रयत्न का उपकरण तथा उपलब्धियों का मापदण्ड वह मानव होगा जो आज शब्दशः अनिकेत और अपरिग्रही है।''[2]

पण्ड़ित जी जबसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आये तभी से राष्ट्र सेवा को उन्होंने अपना ध्येय बना लिया। अपने ध्येय के बीच में वह किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पड़ने देना चाहते थे। उनके मामाजी उन्हें नौकरी करने के लिए बाध्य न कर सके। इसलिए उन्होंने अपने सम्पूर्ण अंकपत्र ही जलवा दिए थे। प्रथम श्रेणी में प्रथम अंक प्राप्त करने वाले दीनदयाल जी किसी प्रकार की नौकरी नहीं करना चाहते थे क्योंकि उनका लक्ष्य तो महान था। उनके जैसा महानमानव छोटे–मोटे लक्ष्य की ओर कदम ही नहीं बढ़ाता। उन्होनें स्वामी विवेकानन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने का श्रेयष्कर कार्य किया है।

पण्ड़ित दीनदयाल जी का राष्ट्र प्रेम ऐसा था कि वे राष्ट्र की सहस–सहस प्रजाशक्ति को ही वे परमेश्वर का रूप मानते थे। वे कहते थे राष्ट्र ही परमेश्वर है और राष्ट्र की उपासना ही परमेश्वर की उपासना है। उनके यह विचार स्वामी विवेकानन्द के विचारों से एकदम मेल खाते हैं। स्वामी जी ने भी राष्ट्र को ईश्वर से बड़ा मानते हुए कहा है – ''आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्म भूमि भारत माता ही हमारी आराध्य देवी बन जाए। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी देवताओं के हट जाने में कोई हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी ईश्वर में लगाओ। हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ है। सर्वत्र उसके पैर है और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी देवताओं को हम नहीं देख पाते उनके पीछे तो हम बेकार दौड़े और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें ? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं।''

अपने राष्ट्रीय स्वत्व के साथ मानव सभ्यता की धारा को समृद्ध करने की मानसिकता से उपाध्याय जी ने भारतीय संस्कृति को अपने चिन्तन का आधार बनाया। इसी आधार पर उनका एकात्ममानववाद विकसित हुआ उपाध्याय जी अखिल भारतीय दृष्टि से सांस्कृतिक एकता के लिए प्रयत्नशील आद्य शंकराचार्य जी तथा राजनैतिक एकत्व के लिए प्रत्यत्नशील आचार्य चाणक्य के प्रति वर्तमान सन्दर्भों में अधिक अनुकरणीय भाव रखते हैं।

व्यष्टि, समष्टि, परमेष्टि, संस्कृति, धर्म चिति, विराट राष्ट्र सुख पुरुषार्थ अवधाराणायें, पण्ड़ित जी ने भारतीय दर्शन परम्परा से प्राप्त की इन्हें दार्शनिक अवधाराणाओं पर उनका सम्पूर्ण चिन्तन आधारित है। इन्हीं अवधाराणाओं को उन्होंने अपने ढंग से परिभाषित किया है। एकात्म मानववाद के अन्तर्गत इन्हीं प्रत्ययों का उपयोग बार–बार हुआ है। पाश्चात्य विचार श्रृंखला की पृष्ठभूमि में आजाद हुए भारत को जिस 'युगानुकूल' व 'स्वदेशनुकूल' विचार दर्शन की आवश्यकता है। एकात्म मानववाद के रूप में पण्ड़ित दीनदयाल जी ने हमें दिया।

सन्दर्भ सूची

1. राष्ट्र जीवन की दिशा सारांश, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, पृ0 183
2. राष्ट्रवाद की सही कल्पना एकात्म मानवदर्शन, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, पृ0 10।
3. राष्ट्रवाद की सही कल्पना एकात्म मानवदर्शन, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, पृ0 11।
4. राष्ट्रवाद की सही कल्पना एकात्म मानवदर्शन, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, पृ0 12।
5. एकात्म मानववाद एकात्म मानवदर्शन, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, पृ0 15।
6. एकात्म मानववाद एकात्म मानवदर्शन, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, पृ0 17।
7. कालीकट अधिवेशन अध्यक्षीय भाषण, पं0 दीनदयाल उपाध्याय
8. भारत का भविष्य, स्वामी विवेकानन्द, पृ0 6, 7।
9. भारत का भविष्य, स्वामी विवेकानन्द, पृ0 19।
10. चन्द्रगुप्त, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, पृ0 63।
11. कर्तव्य एवं विचार, दार्शनिक अवधाराणायें, डॉ0 महेश चन्द्र शर्मा, पृ0 348, पं0 दीनदयाल उपाध्याय पृ0 348